MONEY WISE का हिंदी अनुवाद

पैसे से पैसा कमाना सीखें

आर्थिक आजादी प्राप्त करने के सफल सूत्र

शरद कोमारराजू

पैसे से पैसा
कमाना सीखें
आर्थिक आजादी प्राप्त करने के सफल सूत्र

शरद कोमारराजू

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

रुपए के नोट को समर्पित, जिसने हम सबको
मरौथन धावक बना डाला हौ

प्रस्तावना

मनी, मनी, मनी

ऑलवेज सनी

इन द रिच मैंस वर्ल्ड

अहा-आहा

ऑल द थिंग्स आई कुड डू

इफ आई हैड ए लिटिल मनी…

इट्स अ रिच मैंस वर्ल्ड

—ABBA

मैं शर्त लगा सकता हूँ कि इस ऐतिहासिक पॉप गाने की लाइनों को आपने पूरी तरह पहचान लिया होगा। चाहे स्वीडन में हो या सेवड़ी में, असलियत यही है कि मनुष्य प्रजाति में बहुसंख्यकों की स्थिति ऐसी है कि उनके लिए पैसा कभी पर्याप्त रूप में नहीं रहा है।

इस दुनिया को पैसा ही चला रहा है। यह हमें खुश बनाता है तो कभी दु:खी भी करता है, कभी किसी के प्रति आभारी बनाता है तो कभी बदले की भावना भी भर देता है; लेकिन क्या ऐसा है कि हर चीज के लिए दोष पैसे पर ही मढ़ा जाए या पैसे के प्रति हमारी सोच ही इसके लिए जिम्मेदार है?

हालाँकि आधुनिक समाज पैसे को अत्यधिक महत्त्व देता है, लेकिन हमें यह कभी नहीं बताया-सिखाया जाता कि कैसे इसे सँभालें, इसमें कैसे निवेश करें। इसे बुद्धिमत्तापूर्वक कैसे इस्तेमाल करें। यही वजह है कि यह किताब जरूरी हो जाती है। यह पैसे को नए आयाम में देखने में आपकी मदद करेगी। न्यूटन के भौतिकी के नियमों की तरह ही यहाँ खर्च, बचत और निवेश को नियंत्रित करनेवाले सिद्धांत भी हैं। शरद कोमारराजू ने इन सिद्धांतों को यहाँ स्पष्ट और आसान भाषा में समझाया है।

ऐसा इसलिए, क्योंकि वे आपकी तरह आम इनसान हैं, न कि कोई भारी-भरकम वित्त विशेषज्ञ।

मेरी आपको एक सलाह भी है कि आप यहाँ से जो हासिल करें, उसे रोजमर्रा के क्रिया-कलापों में आजमाएँ भी और उसके परिणामों पर गौर करें तथा उसका विश्लेषण करें। उम्मीद है कि जल्दी ही आपके पास थोड़े पैसे जुट जाएँगे और आपको लगेगा कि पैसा आपका दोस्त है, दुश्मन नहीं।

— रश्मि बंसल

परिचय

प्रेम से भी बड़ा निषेध

जब मैं पंद्रह साल का हुआ और कॅरियर को लेकर मेरी अपने माता-पिता से बात होती कि मुझे इंजीनियरिंग क्षेत्र में जाना चाहिए या मेडिकल लाइन में तो मेरी माँ का पूरा जोर मुझे मेडिकल की पढ़ाई कराने पर रहता; जबकि मेरे पिताजी (जो एक डॉक्टर थे) की इच्छा थी कि मेरे अंदर इंजीनियरिंग की जड़ें जम जाएँ। एक तरफ जहाँ माँ की बातें और हिदायतें अस्पष्ट रहती थीं, वहीं पिताजी मुझे स्पष्ट रूप से आगाह करते रहते थे कि मैं प्यार-व्यार के चक्कर में न पड़ूँ। वे कहते थे कि एक डॉक्टर का पेशा बिना यशवाला (थैंकलेस) होता है और कॅरियर कुछ ऐसा होना चाहिए, जो वक्त गुजरने के साथ ज्यादा आमदनी का जरिया हो। एक डॉक्टर का ध्यान हमेशा इस बात पर लगा होता है कि उसका अगला चेक कब और कितने का आनेवाला है, जबकि एक इंजीनियर सारे आर्थिक मामले अपनी कंपनी पर डाले रखता है और खुद चैन से अपनी जिंदगी बसर करता है।

वे मुझसे कहते थे, "पैसा कमाने के मामले में हम बेहतर नहीं हैं।" इसमें 'हम' का मतलब पूरे परिवार से था। उनका कहना था कि इससे पहले तुम कहो कि पैसा जरूरी नहीं है तो एक बात जान लो कि उस समय, जब तुम बड़े होगे, यह पैसा ही एकमात्र जरूरी चीज़ रह जाएगा।

इस तरह का वार्त्तालाप हमारे परिवार में सामान्य रूप से नहीं, बल्कि कभी-कभार ही होता था। हमारे घरों में सेक्स जैसे विषय पर बात करने में परहेज़ किया जाता था; लेकिन मैं सोचता हूँ कि उससे भी कहीं बड़े पैमाने पर यह प्रयास किया जाता था कि पैसे को लेकर कोई बात न की जाए। मेरे संबंध मेरे माता-पिता और पत्नी से बहुत अच्छे थे और हम खुलकर कला, संस्कृति, राजनीति और कभी-कभी सेक्स पर भी बातें कर लेते थे; लेकिन जब बात पैसे की आती थी तो एक तरह का तनाव हावी हो जाता था, माहौल भारी हो जाता और बात करने के लिए हमें शब्द ढूँढ़ने पड़ते।

फिर भी, इसकी महत्ता से कोई इनकार नहीं कर सकता। हममें से कितने लोग होंगे, जिन्होंने संपत्ति विवाद में परिवारों को तनावपूर्ण माहौल में बँटते नहीं देखा होगा? सबसे ज्वलंत उदाहरण तो हमारी प्राचीन कथा 'महाभारत' में देखने को मिलता है, जिसमें धन और संपत्ति के उचित अधिकार को पाने के लिए भी भाइयों को संघर्ष करना पड़ा था। वर्तमान प्रचलित संस्कृति, जिसे भारत में हम बॉलीवुड कहते हैं, में लगातार पैसे के महत्त्व को लेकर कहानियाँ बुनी जाती रही हैं और समाज में परोसी जाती रही हैं। हम सब इसे पाना चाहते हैं, इसे बढ़ाने को लेकर हमेशा उधेड़बुन में लगे रहते हैं, इसे खोने से डरते हैं और इन सबके बावजूद उन लोगों से बात करने में परहेज़ करते हैं, जो हमारे लिए सबसे ज्यादा मायने रखते हैं।

हालाँकि हम बात भी करते हैं, चाहे पड़ोसी से, सहकर्मियों और दोस्तों से। आप ही बताइए कि आपकी नौकरी लगने पर आपके पिता ने कितने ही लोगों को फोन किया होगा, कितनी ही मर्तबा आपकी माँ ने सामाजिक समारोहों में आपकी तनख्वाह को लेकर खुले रूप में चर्चा की होगी? बड़े कार्यालयों में यह परंपरा सामान्य रूप से देखी जाती है कि लोग आपस में बैठकर बोनस और प्रमोशन पैकेज के ऊपर बात करते हैं और जानकारियाँ साझा करते हैं; लेकिन उसी तरह के सवाल अगर हमारे माँ-बाप हमसे पूछते हैं तो या तो हम चिढ़कर सवाल खारिज कर देते हैं या झूठ बोलते हैं, सामान्यतया बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं।

शादियों में भी तनख्वाह एक अहम भूमिका अदा करती है। कुछ साल पहले एक शादी के सिलसिले में मैंने यह अनुभव भी किया। लड़की पक्ष कमरे के एक कोने में बैठा और हम दूसरी तरफ बैठे हुए थे। नाश्ता-पानी परोसा जा रहा था। हम सब अपनी तरफ से सर्वश्रेष्ठ कहने एवं बताने के लिए प्रयासरत थे और हर पल मुसकराने का जी-तोड़ प्रयास कर रहे थे। तभी लड़की के बड़े भाई को न जाने क्या सूझी कि मुझसे ही पूछ बैठा, "आप कहाँ काम करते हैं?"

मैंने उसे बताया।

उसका अगला सवाल था, "आपकी तनख्वाह कितनी है?"

मैंने कमरे में चारों तरफ नजर दौड़ाई और महसूस किया कि वहाँ मौजूद लोगों को यह सवाल अनुचित जान पड़ा। वे मुझसे इसका जवाब जानने के लिए लालायित जान पड़ रहे थे।

मैंने भी अपने जवाब में, वास्तव में, तनख्वाह बढ़ा-चढ़ाकर ही बताई।

तो क्या आपको नहीं लगता कि यह एक ऐसा मामला है, जो बड़ी तेजी से हालात को बदल देता है? एक तरफ तो हम पूरी दुनिया को यह बताते फिरते हैं कि पैसा जरूरी है, लेकिन वास्तविक हालात में हम इसे महत्त्वहीन दरशाते हैं, यहाँ तक कि हमारे परिवारों में भी, जिनसे अत्यधिक घनिष्ठ रिश्ते होते हैं, उनसे भी हम शायद ही कभी पैसे-रुपए की बात करते हैं। क्या ऐसा वास्तव में है कि पैसे की वजह से ही हमारे दोस्तों के बीच हमारी अलग पहचान बनती है, हम पहचाने जाते हैं; जबकि कहीं गहरे में, इसी वजह से हम नंगे हो जाते हैं, हम भयानक नजर आने लगते हैं और येन-केन प्रकारेण हमें शर्मिंदा होना पड़ता है?

इसमें जरा भी शक नहीं कि तमाम परिवारों में बिखराव की जड़ में यह पैसा ही है। उन लोगों को, जिन्हें अपनी परदादी के बारे में भी नहीं मालूम, एक सामान्य कहावत कुछ इस तरह कही जाती है—

पैसा-पैसा, यह तुमने क्या किया?
तुमने उस परिवार को बाँटा, जो था कभी एक।

पति और पत्नी के बीच भी पैसा अपनी जगह बना ही लेता है और जीभ लपलपाता रहता है। दुनिया भर की तमाम संस्कृतियों में, जहाँ कभी भी शादी के रिश्ते तार-तार हुए हैं, उनके पीछे न तो सेक्स है, न प्यार या रोमांस या दु:ख है, बल्कि यह पैसा जिम्मेदार है।

सन् 1992 में अमेरिका में परिवारों और सगे-संबंधियों के बीच कराए गए एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण में 2,800 दंपतियों ने हिस्सा लिया, जिसमें उनसे घरेलू विवाद के पीछे की सबसे सामान्य वजह पूछी गई और उनसे पूछा गया कि वह वजह प्राय: कितनी सामने आती रहती है और वह किस गहराई से उनके संबंधों को प्रभावित करती है। लिस्ट में तमाम समान कारणों के बीच, मसलन—कामकाज, ससुराल पक्ष, साथ समय बिताना, सेक्स और पैसा; पैसे को सबसे बड़े समान कारण के रूप में जगह मिली।

एक हालिया उदाहरण : वर्ष 2012 में एक अध्ययन हुआ, जिसका विषय था—'वित्तीय मामलों और तलाक के बीच के रिश्ते की जाँच' और यह 'फैमिली रिलेशंस' (अंक 61) जर्नल में प्रकाशित हुआ। उत्तरी अमेरिका के 4,500 दंपतियों का सीधा-सीधा डाटा इसमें शामिल किया गया और निष्कर्ष यह निकला कि तलाक के सबसे बड़े कारण न तो बच्चे और न सेक्स था, लेकिन पैसा जरूर मुख्य वजह थी।

जी, यह अध्ययन तो अमेरिका का था; लेकिन भारत में अगर कभी इस तरह का अध्ययन हुआ तो आँकड़े चौंकानेवाले ही सामने आएँगे, लेकिन अगर हम अरेंज्ड मैरिज की व्यापक स्वीकार्यता पर गौर करें तो देश में शादियाँ तय होने के पीछे पैसे को एकमात्र एजेंडा मानना कहीं से भी गलत नहीं होगा। शादियों में भले ही सारी बातें अच्छी हों, लेकिन अगर पैसा इसमें शामिल नहीं है तो सबकुछ धरा-का-धरा रहने का खतरा रहता है।

चाहे आप अपनी शादी के बारे में सोचें या अपने माता-पिता और भाई-बहन से रिश्तों की गरमाहट की तुलना करें, उनमें से कितने ऐसे हैं, जो अंदर-ही-अंदर असंतोष का भाव रखते हैं। क्या आपका छोटा भाई आपसे ज्यादा कमाता है? क्या आपके पिता ने आपकी बहन के नाम आपकी तुलना में ज्यादा संपत्ति नाम कर दी है? क्या आपका रिश्ते का बेटा आपके बेटे से ज्यादा कमाता है और क्या आप उस घड़ी से भयाक्रांत नहीं रहते कि कहीं वह कोने में ले जाकर आपसे बेटे की तनख्वाह की तुलना अपनी तनख्वाह से करने को न कह दे? अपने वर्तमान जीवन में कितनी ही बार हम सब ऐसा सोचते हैं कि काश, हम अपने बचपन के उन्हीं दिनों में वापस जा पाते, जब न तो रुतबे की चिंता थी और न पैसे की और सब जी भर के खेलते, लड़ते और फिर आपस में एक-दूसरे को स्नेह भी करते।

अगर हमारे मन में ऐसे खयालात आएँ तो शायद हमें सबसे पहला कदम यह उठाना चाहिए कि अपनी अंतरात्मा में झाँककर खुद से यह पूछना चाहिए कि हमारे लिए पैसे के मायने क्या हैं। असल चीज यह है कि विरोधाभास से जूझने के दौरान बेहिचक इस मुद्दे पर टिके रहना चाहिए। आपको शायद याद होगा कि रईस चाचा हमेशा एक-एक पैसे बचाने के लिए कंजूसी करते और दुनिया भर में यह दावा करते फिरते कि 'पैसे से खुशियाँ नहीं खरीदी जा सकतीं।' हम सब विरोधाभासों के बीच पिसते हैं, जैसे कि हम अपने लालच और सद्व्यवहार के बीच संतुलन बनाते हैं, ईर्ष्या और नम्रता के बीच संतुलन, गुस्से एवं राहत के बीच संतुलन बनाते हैं। अगर आप पैसे के चलते अपने भावों में आनेवाले उतार-चढ़ाव की सूची बनाएँ तो आपको चौंकानेवाले समीकरण बनते नजर आएँगे, मसलन—भय और आनंद, स्वीकार्यता की जरूरत और भीड़ से अलग नजर आने की जरूरत के भाव झलकेंगे। यह पूरी तरह प्राकृतिक भाव है।

और अब, जबकि हम इसे समझने लगे हैं, तो हो सकता है कि हम सब ऐसा प्रयास करें कि पैसे-रुपए के मामले में हम अपने परिजनों के बीच ज्यादा-से-ज्यादा चर्चा कर सकें। अगर हम कर्ज के बोझ तले दबते जा रहे हैं, अगर हमारे निवेश हमारी उम्मीद के मुताबिक नहीं बढ़ रहे हैं तो श्रेष्ठतम सोच यही होना चाहिए कि हमारे लिए सबसे जरूरी लोगों के साथ बैठकर हम इन सारे मसलों पर चर्चा करें और निष्कर्ष निकालें। कौन जानता है कि हमें उसी दौरान यह पता चले कि वे पैसे की तुलना में हमें ज्यादा तरजीह देते हों।

वस्तु का प्रलोभन

एक बार एक धर्मगुरु और भौतिकतावादी के बीच बहस हो रही थी। पहले ने अपनी आँखों से जहर उगलते हुए कहा, "पैसे से आप प्यार नहीं खरीद सकते!"

इस पर दूसरे ने शांतिपूर्वक जवाब दिया, "प्यार से आप कुछ नहीं खरीद सकते।"

हम सभी के अंदर एक हिस्सा भौतिकतावादी का है तो दूसरा हिस्सा धार्मिक पहलू से भरा हुआ है। यहाँ तक कि एक संत, जिसने संसार के सभी सुखों को छोड़ रखा है, को भी खाना, नहाना, दाढ़ी बनाना और सोने के लिए एक स्थान की आवश्यकता पड़ती है। भौतिकतावादी होने के पीछे भूख सबसे बड़ा तर्क है। दूसरी तरफ, कितना ही भीषण भौतिकतावादी कोई क्यों न बन जाए, लेकिन उसके भी मन का एक कोना अनमोल चीजों, मसलन—प्रेम, सुकून, शांति और कला के लिए छूटा रहता है। हमें दोनों ही बनने की जिद नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करना मनुष्य होने के विपरीत विद्रोही प्रवृत्ति दरशाने लगेगा। पैसे के साथ एक संतोषजनक रिश्ता बनाए रखने के लिए यह समझना जरूरी है कि समय के अनुसार हमें किस तरफ झुकाव रखना है। इसके पीछे शाश्वत सत्य जैसा कुछ नहीं है और यह पूरी तरह आपके ऊपर लागू होनेवाले आपके जवाब पर ही निर्भर करेगा। पिछले सेक्शन में हमने बात की थी कि हमें यह सोचने की जरूरत है कि हमारे लिए पैसे के मायने क्या हैं। कुछ सोचने के बाद हमने यह जाना कि पैसे को लेकर हमारी इच्छा वास्तव में केवल पैसे के लिए नहीं है, बल्कि उन चीजों के लिए है, जो हम पैसे से खरीद सकते हैं। इस तरह हम पैसे की भूख को विस्तृत रूप से समझ सकते हैं कि यह किसी 'वस्तु', छोटे या बड़े, से जुड़ी हुई है। पिछली कुछ पीढ़ियों पर नजर दौड़ाएँ, जिसमें पूँजीवादी बाजार अपने आयाम को बढ़ा रहा है। हम पाते हैं कि भौतिक सुख-सुविधाओं में बढ़ोतरी करनेवाले उत्पादों को ज्यादा-से-ज्यादा हासिल करने की होड़ मची हुई है। हम यह देखते हैं कि हमारे मन-मस्तिष्क में यह बात भरी जाती है कि ज्यादा-से-ज्यादा 'वस्तुओं' का होना हमें ज्यादा संतुष्ट व खुश बनाएगा और चूँकि यह सब पैसे से ही खरीदा जा सकता है, तो यही कारण है कि पैसे को लेकर सोचा जाता है कि यह हमारी खुशियों का अनुपात और बढ़ा सकता है।

लेकिन ऐसा नहीं है कि पैसे से खुशियाँ खरीदी जा सकती हों। ऐसा नहीं होता। हम सब यह बात जानते हैं। यह बिल्कुल वैसे ही है कि पैसे से सामान खरीदा जाता है और हम सोचते हैं कि इससे हमें खुशी मिलती है। यह शायद एक जैसी बात नहीं है। शायद हो भी सकती है।

उपभोक्ता का उत्थान

आज हम सभी उपभोक्ता हैं। हमारे सामने किसी-न-किसी माध्यम से, चाहे वह टेलीविज़न हो, बिलबोर्ड हो, लैपटॉप हो और मोबाइल फोन हो, हजारों की तादाद में विज्ञापन छाए रहते हैं। हमारे बच्चे, जो सूचना युग में पैदा हुए हैं, वे किसी परिवार, देश या समुदाय का हिस्सा होने से पहले उन कंपनियों के हो जाते हैं, जिनका सामान वे इस्तेमाल करते हैं।

अगर किसी आम आदमी के पास कोई अधिकार है, जो सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य हो, तो वह उपभोग का अधिकार ही है; लेकिन ऐसा नहीं कि विज्ञापन का जादू आपको उस अमुक सामान की इच्छा रखने या खरीदने तक सीमित रखता है, बल्कि वह आपको लगातार उक्त सामान की इच्छा बनाए रखे हुए देखना चाहता है। भला सोचिए कि नाइके कंपनी आपसे कैसे खुश रह सकती है, अगर आप उस कंपनी के एक जोड़ी जूते को लगातार दो से तीन साल तक पहनते रहे तो? एप्पल कंपनी कैसे जीवित रह पाएगी, अगर आप आई फोन 4 से ही संतुष्ट हो गए तो? क्या माइक्रोसॉफ्ट फायदे में रह पाएगी, अगर हममें से ज्यादातर विंडोज़ 98 से ही खुश रह गए तो?

इन कंपनियों के मार्केटिंग विभाग लोगों के दिमाग की आशंकाओं और कमजोरियों को अच्छी तरह जानते-समझते हैं। हम अपने लोगों द्वारा ही खारिज किए जाने से डरते हैं। हम डरते हैं कि कहीं पिछड़कर हम अपने साथी समूह से बहिष्कृत न हो जाएँ। हम अपने से धनी लोगों की तरफ देखते हैं और गुपचुप तरीके से वह सब हासिल करते हैं, जो उनके पास मौजूद रहता है।

गौर करिए, जो कार आप खरीदना चाहते हैं, वह महज कार नहीं होती, बल्कि उसका ब्रोशर कहता है कि यह वह कार है, जो 'सफल लोग चलाते' हैं। सप्ताहांत पर जब आप खरीदने की इच्छा लेकर कोई घर देखने जाते हैं तो आपको बताया जाता है कि यह केवल घर नहीं है, बल्कि यह एक किंचित् जीवन-शैली का प्रतिबिंब है। विज्ञापन इनके सुर में सुर मिलाते हैं।

पैसे पर पूरी पकड़ हासिल करने के लिए हमें सबसे पहले अपने अंदर के उपभोक्ता को जीतना होगा। इसमें वक्त लग सकता है, क्योंकि यह अकेले लड़ी जानेवाली लड़ाई है और आपके दूसरी तरफ दिग्गज और विशालकाय कंपनियाँ हैं, जो हर साल अरबों डॉलर खर्च करती हैं, ताकि आप जरूरत की ट्रेडमिल पर साल भर दौड़ते रहें। क्या हम, जो कि छोटे लोग हैं, कोई उम्मीद कर सकते हैं?

इसके जवाब में हम पाते हैं कि हम कर सकते हैं। खुद पर गौर करें तो पाएँगे कि जितने आप पाओलोव के कुत्तों या डार्विन के छोटी चिड़िया सरीखे जीवों की ही तरह भावनाएँ रखनेवाले जीव हैं, उसी तरह हम आदतोंवाले जीव भी हैं, जिनसे हम अन्य जीवों की तुलना में अच्छी तरह वाकिफ रहते हैं। पहली मूलभूत बात हमें यह ध्यान रखनी चाहिए कि भले ही हम उत्पादों के विक्रेताओं को भला-बुरा कहते हों, क्योंकि वे हमें खरीदारी के लिए तरह-तरह से लुभाते हैं, लेकिन असल बात यह है कि अपने शोषण के लिए जिम्मेदार हम ही हैं। हमारी रजामंदी के बगैर हमारा शोषण कोई नहीं कर सकता। ऐसा हो सकता है कि इस मामले में हमारी सहमति अंतर्निहित हो, लेकिन फिर भी, हम यूँ ही इजाजत दे देते हैं। अगर हम चुन लें कि हमें ऐसा नहीं करना तो हम खुद को आजाद महसूस कर सकते हैं।

सबसे आसान समाधान तो यह है कि हम सारे विज्ञापनों को वास्तव में नजरअंदाज करना शुरू कर दें। ज्यादातर समय हमें यह लगता है कि भले ही हम विज्ञापनों को देख रहे हों, लेकिन हमारे अंदर इतनी कूवत है कि इनका हम पर कोई असर नहीं होनेवाला; लेकिन जल्दी ही यह मुगालता दूर हो जाता है और हम खुद को असहाय-सा इनके जाल में फँसा पाते हैं।

लेकिन विज्ञापन आपके चारों तरफ हैं। क्या ऐसा नहीं है? भला कोई कैसे टी.वी. देखते, सड़क से गुजरते समय सामने बिलबोर्ड पढ़ने या इंटरनेट पर कुछ खोजते हुए खुद को इनसे अलग रख सकता है? इसके लिए प्रयास करना असंभव के लिए प्रयास करने के समान है। तो हमारे पास रास्ता क्या बचता है फिर? सर्वश्रेष्ठ समाधान तो यही है कि हम पर थोपे जानेवाले संदेशों का विश्लेषण किया जाए और उन्हें दूसरे पहलू की तरफ से समझा जाए, यानी कंपनियों की सोच के हिसाब से विज्ञापनों का आकलन किया जाए। किसी वस्तु विशेष को बेचने के पीछे कंपनियों की क्या मंशा हो सकती है? इन विज्ञापनों में ऐसा क्या है कि हमें कोई प्रतिक्रिया देनी चाहिए? विज्ञापनों में दिखाई जानेवाली तसवीरें इतनी ज्यादा कामुक क्यों हैं? अगर आप कुछ मिनट निकालें यह सब सोचने के लिए, तो दस में से नौ बार आप अपने अंदर अप्रत्याशित ऊर्जा महसूस करेंगे और विज्ञापनों को फिर आप हास्यास्पद पाएँगे और इसके बाद तो आप इनसे अलग राय रखने के तमाम कारण खुद ही खोज निकालेंगे।

तो अगली बार जब आप किसी ट्रैवल ब्रोशर पर खुशहाल दंपती के हाथों में हाथ डाले मॉरीशस के समुद्र-तट पर टहलते हुए की फोटो देखें तो टिकट बुक कराने से पहले अपने आप से कुछ सवाल जरूर पूछें। क्या समुद्र-तट वास्तव में आपको लुभाते हैं? अगर ऐसा हो भी तो क्या यह जरूरी है कि मॉरीशस जाने पर ही पैसा बरबाद किया जाए? क्या वह सुख आपको गोवा के समुद्र-तट पर नहीं मिल सकेगा? क्या इस यात्रा के पीछे दंपतियों में अंतर्निहित प्रेम के भाव खोजने के लिए आप वहाँ जाएँगे, या क्या वहाँ जाने पर आपको आजादी और आनंद की अलग अनुभूति प्राप्त होगी? इसके अलावा, आप यह भी विचार कर सकते हैं कि क्या ऐसा करना सर्वश्रेष्ठ विचार है, जिससे आप अपने जीवन के बारे में बेहतर आकलन कर सकते हैं और इसी माध्यम से आप अपने दैनिक जीवन में प्रेम और आजादी को वापस ला सकते हैं? जब आप इतने सारे सवालों पर विचार कर रहे होंगे, तब आपको मॉरीशस बिल्कुल स्वर्ग के गेटवे जैसा नहीं प्रतीत होगा।

हालाँकि आप इन सब सवालों के बीच ऐसा भी सोच सकते हैं कि आपको मॉरीशस जाना चाहिए, ताकि अपने बच्चों को नई जगह दिखा सकें, ऑफिस की एकरूपता को तोड़ सकें और तब आपको टिकट बुक कराने में खुशी महसूस होगी।

ज्यादातर मामलों में, अगर हम अपने अंदर अच्छे और गहरे तरीके से नजर डालें तो पाएँगे कि विज्ञापनों की भीड़ में जो उत्पाद वाकई आपकी जरूरत को संतुष्ट कर सकते हैं, उनकी उपस्थिति बेहद कम है।

मितव्ययिता की ओर पहला कदम

इस विषय पर चर्चा शुरू करने से पहले मैं यह कहना चाहता हूँ कि मितव्ययी जीवन-शैली जरूरी नहीं कि जीने का श्रेष्ठतम तरीका हो। यह आपका जीवन है, तो यह आपकी पसंद से ही व्यतीत होना चाहिए, बजाय कि किसी दूसरे की जीवन-शैली का अनुसरण करें। मेरा जोर सिर्फ इस बात पर है कि अगर आपके चुनिंदा लक्ष्यों में वित्तीय आत्मनिर्भरता भी एक लक्ष्य है, अगर आपका लक्ष्य है कि एक दिन आप बिना काम किए हुए जीवन व्यतीत कर सकें तो आपको स्वयं को मितव्ययी या किफायत खर्च होने के लिए तैयार करना होगा।

हममें से ज्यादातर मितव्ययी होने या किफायत खर्च होने को कंजूसी से जोड़ देते हैं। शायद ऐसा हो भी। शायद हम सब खर्चीले और कंजूसी के पैमाने पर कहीं-न-कहीं झूठ बोलते हैं और शायद ऐसा भी हो सकता है कि हमें सीढ़ी बनाकर ऊपर उठे शख्स को देखकर उस जैसा बनने के चक्कर में हम बरबाद होते रहें, जो हमें लेकर उपहास और ईर्ष्या के भाव रखता हो।

मेरा आरोप है कि जो लोग मितव्ययी होते हैं, उनका लक्ष्य भी अलग होता है। उनके लिए किफायत खर्च होना भविष्य की वित्तीय सुरक्षा के मद्देनजर होता है, जो कि वर्तमान की कीमत पर किया जाता है। उन्हें पता होता है कि क्षणिक सुख या आनंद की सीमितता कितनी है और सतर्कता की तरफ उनका झुकाव बल्कि ज्यादा रहता है। जो लोग इतिहास के ऐसे मोड़ पर पैदा हुए होते हैं, जब कठिन दौर गुजरा होता है, उनमें बचत की आदत ज्यादा होती है; जबकि सुखी परिवारों में पले-बढ़े लोगों में खर्च की प्रवृत्ति ज्यादा होती है। लेकिन मोटे तौर पर भले ही आप कितना कम या ज्यादा कमाते हों, बुद्धिमानी इसी में है कि बुरे दिनों को ध्यान में रखते हुए बचत की जाए। आप भविष्य में होनेवाली स्वास्थ्य आवश्यकताओं का आकलन नहीं कर सकते और न ही आप प्राकृतिक आपदा की भयावहता के बारे में ही अनुमान लगा सकते हैं। इसके अलावा एक वक्त ऐसा भी आएगा, जबकि आप बूढ़े हो जाएँगे और काम करने लायक स्थिति में नहीं रह जाएँगे। इसलिए बेहतर यही है कि आपके खाते में इतनी जमा-पूँजी रहे कि आफत के दौरान आपको न किसी से उधार लेने की जरूरत पड़े और न ही किसी के आगे हाथ फैलाना पड़े। उपभोग अस्वास्थ्यकर नहीं है, बशर्ते आपको अपनी वित्तीय सीमाओं का अच्छे से भान हो।

इसके साथ ही पूरे जीवनकाल के दौरान हमारे दिमाग में यही भरा जाता है कि ज्यादा ही अच्छा है, ज्यादा ही खुशी है, ज्यादा ही शानदार है। इसलिए हम हमेशा सोचते हैं कि कम होना बुरा है, दुःखद है, हीनता है; लेकिन

वास्तव में ज्यादा होना एक हद तक ही उचित होता है और एक बार उस बिंदु तक पहुँचने के बाद हम अमूर्त में खुशियाँ खोजते हैं, जैसे आजादी और खुद की कीमत, जिसे किसी प्रतिशत या आँकड़ों में बयाँ नहीं किया जा सकता और इसीलिए इन्हें ज्यादातर हाशिए पर रखते हैं।

इसलिए, शायद हमें अपने पहले कुछ कदम मितव्ययिता की दिशा में उठाने चाहिए और वह भी इस सवाल के साथ कि ऐसा करने की आधारभूत वजह क्या है। तब शायद ऐसा हो कि हम जीवन और खुशियों को लेकर अपने ही बनाए अनुमानों को चुनौती देने लगें। तब ऐसा होगा कि जो सच्चाई हमारे भीतर से निकलेगी, वह हमें बदलाव के रास्ते पर अग्रसर करेगी।

1

परिप्रेक्ष्य

इस बात के सबूत तो नहीं हो सकते, लेकिन ऐसा माना जाता है कि जब से मनुष्य ने सामाजिक समूहों के साथ रहना शुरू किया होगा, उन्हें एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करने की जरूरत महसूस हुई होगी। जिस दुनिया में हमारे पूर्वज रह आए, वह बहुत ही कठोर और अप्रत्याशित थी। आज का अल्फा पुरुष कल को अप्रासंगिक हो सकता है। अगर आज भी हम उन्हीं समूहों का हिस्सा होते, जो अपनी ही देखभाल कर रहा होता, तो वर्तमान में भी वस्तु विनिमय (barter) व्यवस्था का अच्छी तरह विकसित सिस्टम हमें मिलता।

8,000 से 5,000 ईसा पूर्व के बीच किसी समय हमने खाने की तलाश में दर-दर भटकना बंद कर दिया था और अपना खुद का अनाज पैदा करने लगे थे। जगह-जगह लगाए जानेवाले तंबुओं की जगह रहने के लिए स्थायी व्यवस्था की जाने लगी थी। 3,000 ईसा पूर्व आते-आते फलती-फूलती सभ्यताओं ने नील, सिंधु और फरात नदियों के किनारे जीवन को उभारा। उनमें तमाम आदतें एक समान थीं—वे कृषि आधारित थे, उनका सामाजिक ताना-बाना बहुत अच्छी तरह व्याख्यायित था और वे किसी-न-किसी तरह की मुद्रा का प्रयोग करते थे।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के बीच यह समान सोच थी, जो कि एडम स्मिथ के द्वारा चर्चित हुई थी, कि वस्तुत विनिमय ही पहली मौद्रिक व्यवस्था थी; लेकिन चूँकि इसमें 'जरूरतों का संयोग' (coincidence of wants) नहीं था, इस वजह से व्यापार करना इतना कठिन और कष्टप्रद था कि लेखा-जोखा का मानक जब खोजा गया तो उसे लागू करना अपरिहार्य हो गया और उसे हाथोहाथ लिया गया।

हालाँकि इस पहलू पर भी काफी मतभेद रहे हैं। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि वस्तु विनिमय नहीं, बल्कि पहले का व्यापार उधार (credit) पर चलता था। ज्यादातर प्राचीन समाज, 600 ईसा पूर्व में पैसे की खोज होने तक, खातों का संचालन उधार पर ही करता था; लेकिन चूँकि इस मामले में भी तमाम पहलुओं को मापना, खासकर हमारे अंक जब बढ़-चढ़कर दिखने लगे होंगे और लोग ज्यादा-से-ज्यादा विशेषज्ञ होते गए होंगे, तब लेन-देन के लिए एक ऐसी व्यवस्था की जरूरत शिद्दत से महसूस की जाती रही होगी, जो समान रूप से पहचान बना सके और आदान-प्रदान का उचित माध्यम बन सके।

धन की अरस्तू की व्याख्या

दार्शनिक अरस्तू ने कहा था कि धन के रूप में किसी भी चीज को इस्तेमाल किया जा सकता है, जब तक कि व्यापार में शामिल लोग उसकी कीमत को लेकर सहमत रहते हैं। वास्तव में, अपने इतिहास के ज्यादातर हिस्से में हमने नमक, मछली, पंख, समुद्री शंख और रंगीन पत्थरों को समय-समय पर इस्तेमाल किया ही है। मान लीजिए कि आप किसान हैं और मैं लुहार हूँ। आपके पाँच बोरी चावल के बदले मैं आपको तीन कबूतर के पंख दे सकता हूँ। कल को एक बक्से कील के बदले में आप मुझे दो पंख भुगतान कर सकते हैं। जब तक आप और मैं सहूलियत के आधार पर संबंधित वस्तुओं के लेन-देन में पंखों के लेन-देन पर सहमत हैं, यह व्यवस्था काम करती रहेगी, लेकिन जिस पल हमारे दिमाग में संदेह उत्पन्न हो जाएगा और हम यह सोचने लगेंगे कि हमारे पास मौजूद पंखों की कीमत घट गई है, यह व्यवस्था धराशायी हो जाएगी और हमें नई तरह की मुद्रा की खोज में जुटना पड़ेगा।

तमाम अच्छे दार्शनिकों की भाँति अरस्तू ने भी व्यापार के अच्छे माध्यम को लेकर दिशा-निर्देश तैयार किए थे। उन्होंने कहा था कि पैसा इन चार गुणों को संतुष्ट करनेवाला होना चाहिए—